श्राद्ध तत्त्व : विहंगम परिचय

श्राद्ध की परिभाषा

'श्रद्धान्वेनास्तस्य अण्' इस व्याकरण सूत्र के अनुसार श्रद्धा शब्द में अण् प्रत्यय करने पर श्राद्ध शब्द की निष्पत्ति होती है। अतः पाणिनि के मतानुसार **"श्रद्धा प्रयोजनस्य इति श्राद्धम्"**

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

अर्थात जिसका प्रयोजन श्रद्धा से वह श्राद्ध कहलाता है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार **श्रद्धा + "चूडादिभ्य उपसंख्यानम् ।" ५ । १ । ११० । इत्यस्यवार्त्तिकोक्त्या अण् ।)** अर्थात् श्रद्धा ही जिसका प्रयोजन है, वह श्राद्ध कहलाता है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि इसे श्राद्ध इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके मूल में श्रद्धा होती है। मिताक्षर ने श्राद्ध को इस प्रकार परिभाषित किया है-

"श्राद्धं नाम तदनीयस्य तत्स्यानीयस्य वा द्रव्यस्य प्रेतोद्देशेन श्रद्धयां त्यागः"

अर्थात् पितरों के निमित्त उनके कल्याण एवं तृप्ति के लिए श्रद्धापूर्वक किसी वस्तु का या उससे सम्बन्धित किसी द्रव्य का त्याग श्राद्ध है।

कात्यायन गृह्यसूत्र के श्राद्ध प्रकरण में कहा है कि **"श्रद्धाया**

दीयते यस्मात् तेन श्राद्धं निगद्यते।” अर्थात् श्रद्धा से युक्त होकर दिया जाने वाला भोजन वस्त्रादि श्राद्ध है। ब्रह्म पुराण में श्राद्ध को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत् ।

पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् ।।

श्राद्ध परिचय

मनु ने मनुस्मृति में इस बात को और भी अधिक स्पष्ट किया है कि पूर्वज पिता, पितामह एवं प्रपितामह क्रम से पितृदेवों, अर्थात् वसुओं, रुद्रों एवं आदित्य के समान हैं और श्राद्ध करते समय उनको मनुष्य के तीन पूर्वजों का प्रतिनिधि मानना चाहिए -

वसून्वदन्ति तु पितृन्रुद्रांश्चैव पितामहान्।

प्रपितामहांश्चादित्यान्श्रुतिरेषा सनातनी।

शास्त्रों में यह भी वर्णन आया है कि श्राद्धकर्ता के द्वारा श्रद्धा से पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को खिलाया जाता है अथवा अग्नि में जो आहुतियां डाली जाती है, वे अवश्यमेव पितरों तक पहुंचती है तथा पितर उससे तृप्त होते हैं।

निघण्टु में "श्रत्" और "श्रद्धा' दोनों का ही अर्थ सत्य दिखाया गया है, इस प्रकार श्रद्धा और श्राद्ध में घनिष्ठ सम्बन्ध है। देवल रत्नाकर में कहा गया है – धर्मकार्यों के करने में विश्वास और निपुणता ही श्रद्धा कहलाती है। श्रद्धा के बिना धर्मकार्यों को करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। इसे श्रद्धा से युक्त होकर पितरों एवं प्रेतात्मा के निमित्त जो पिण्डदानादि कृत्य किये जाते हैं वे श्राद्ध कहलाते हैं। श्राद्धकर्ता द्वारा श्रद्धापूर्वक पितरों के निमित्त हव्य-वाहन अग्नि में अन्नादि को आहुति प्रदान

करना श्राद्ध कहलाता है।

बृहस्पति ने श्राद्ध को परिभाषित करते हुये कहा है कि इसमें व्यन्जनादि तथा दूध, मधु, घी से युक्त वस्तुएं श्रद्धा से दी जाती है इसलिए इसे श्राद्ध कहते है। नृसिंह- पुराण में कहा गया है कि "दिव्य पितरों को, देवताओं को अपने पितरों को, मनीषियों को तथा मनुष्यों को श्रद्धा से तृप्त करना श्राद्ध है। इससे यह स्पष्ट होता है कि देवताओं को भी श्राद्धं देना चाहिए। इसलिए देवताओं को श्रद्धापूर्वक दी गई वस्तुएं देव श्राद्ध कहलाता है।

वाचस्पत्यम् में भी कहा गया है कि **श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्ध तेन निगद्यते।** श्राद्धकर्ता श्रद्धापूर्वक पितरों के लिए जो देता है उसी को श्राद्ध कहते हैं। मानवगृह्यसूत्र के भाष्यकार आष्टावक्र के अनुसार श्राद्ध शब्द पितृकर्म के लिए प्रयुक्त किया गया है।

धर्मसिन्धु में श्राद्ध के स्वरूप का निर्देश करते हुए कहा है कि मृत पितरादि के उद्देश्यसे विहित-काल और देश में अन्न, स्वर्णादि द्रव्य का विधिपूर्वक दान श्राद्ध कहलाता है। इसमें अग्निकरण, पिण्डदान तथा ब्राह्मण भोजन प्रधान कृत्य है। श्राद्धकल्पतरु में तो यहां तक कहा है कि पितरों को उद्देश्य करके कोई वस्तु या द्रव्य देना चाहिए परन्तु द्रव्य तभी पितरों को प्राप्त होगा, जब श्रद्धापूर्वक उस द्रव्य को अर्पण किया जाय तथा श्राद्ध में आमन्त्रित ब्राह्मण दिये गये द्रव्य या वस्तु को स्वीकार करें। यदि वे स्वीकार नहीं करते तो वह द्रव्य पितरों को प्राप्त नहीं होगा। अतः ब्राह्मणों द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक है। ब्राह्मण हो इस श्राद्धकृत्य के मुख्य अंग है।

निर्णयसिन्धु में उद्धृत मरीचिकृत परिभाषा के अनुसार प्रेत

और पितरों को लक्ष्य करके स्वयं को अच्छा लगने वाला जो भोजन श्रद्धापूर्वक दिया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं ।

उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि श्राद्ध का सम्बन्ध श्रद्धा से है तथा श्रद्धा से पितरो को दिए जाने वाले भोज्यादि पदार्थो का शास्त्रीय प्रक्रिया विशेष -श्राद्ध कहलाता है।

श्राद्ध का महत्त्व

भारतीय संस्कृति में जिस प्रकार उपनयन, विवाह आदि संस्कारों का महत्त्व है वैसे ही पितृकर्म में श्राद्ध का भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। भारतीय धर्मग्रंथों के अनुसार मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण प्रमुख माने गए हैं- पितृ ऋण, देव

ऋण तथा ऋषि ऋण। इनमें पितृ ऋण सर्वोपरि है। पितृ ऋण में पिता के अतिरिक्त माता तथा वे सभी पूर्वज हैं, जिन्होंने हमें अपना जीवन धारण करने तथा उसका विकास करने में सहयोग दिया । पितृऋण से मुक्ति श्राद्धकर्म द्वारा ही सम्भव है। मृत पितरों को सन्तुष्टि के लिए श्राद्ध-कर्म करना भी नितान्त आवश्यक माना गया है। पितरों की क्षुधा - पिपासा श्राद्ध कर्म के द्वारा शान्त होती है, अतः पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध अनिवार्यरूप से करना चाहिए। पितर अपेक्षा करते है कि उनके वंश, परिवार के लोग कम से कम वर्ष में एक बार इनके निमित भोज्य तथा पेय पदार्थों को स्वधा के रूप में अवश्य ही प्रदान करेंगे। मनुष्य सन्तान की कामना भी सम्भवतः इसीलिए करता है कि उसकी मृत्यु के उपरान्त श्राद्धादि में पिण्डदान की प्रक्रिया अविच्छिन्न रूप से चलती रहे तथा पितर लोग तृप्त होते रहें ।

बोधायन–धर्मसूत्र में कहा गया है कि पितरों के सम्मान में पितृकर्म श्राद्ध करने से दीर्घायु, स्वर्ग, यज्ञ और समृद्धि प्राप्त होती है -

पित्र्यमायुष्यम् स्वर्यें यशस्य पुष्टि कर्म च ।

याज्ञवल्क्यस्मृति में उल्लेख है कि प्रसन्न होकर पितामह आदि पितर मनुष्यों को आयु, सन्तान, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख, यहाँ तक कि राज्य भी प्रदान करते हैं-

आयुः प्रजां धनं विद्यास्वर्गमोक्षं सुखानि च ।

प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रोता नृणा पितामह ।।

श्राद्ध प्रकाश में कहा गया है कि य पितरों की पूजा तथा तृप्ति

से मनुष्य, आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, श्री, पशु, धन और धान्य प्राप्त करता है। सुमन्तु ने तो यहां तक कहा है कि मनुष्य के लिए श्राद्ध से अधिक कल्याणकारी कोई कर्म नहीं है। इसलिए बुद्धिमानों को सभी प्रयत्नों से श्राद्ध कर्म करना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार श्राद्ध का सम्बन्ध कर्म, पुनर्जन्म और कर्मविपाक के सिद्धान्त है। बृहदारण्योपनिषद्' में कहा गया है, कि मनुष्य जैसे कर्म करता है वैसे ही फल भोगता है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार आत्मा इस शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है कि आत्मा जीर्ण-शरीर को फटे-पुराने वस्त्रों की तरह त्यागकर नये वस्त्रों के सदृश नवीन शरीर को धारण करता है। मरने के पश्चात् जीवात्मा प्रेतावस्था में रहता है और पुत्रों के द्वारा दिये गये पिण्डदानादि द्वारा पितर बन जाता है तथा उसके पश्चात् श्राद्ध क्रिया से प्रसन्न होकर मनुष्यों को

सभी प्रकार के सुख प्रदान करता है । इस सम्बन्ध में मत्स्य-पुराण में भी वर्णन प्राप्त होता है कि ऋषियों ने यह प्रश्न पूछा कि श्राद्ध में आमन्त्रित ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक खिलाया गया भोजन उन मृतात्माओं के पास कैसे पहुंच जाता है जो विभिन्न योनियों में विभिन्न रूपों में पुनर्जन्म ले चुके है ? इसके उत्तर में यह कहा गया है कि पिता, पितामह और प्रपिंतामह क्रमशः वसु. रुद्र और आदित्य बन जाते हैं। श्राद्ध के समय में मृतक के नाम, गोत्र तथा मन्त्रों के साथ श्रद्धा से दिये हुए उपहार पितरों के पास पहुंच जाते है । मृतात्मा ने जिस-जिस रूप में पुनः जन्म लिया होता है वे उपहार उसके उसी रूप के लिए उपयोगी वस्तु बन जाते है। वायुपुराण के अनुसार श्राद्ध के समय पितर आमन्त्रित ब्राह्मणों में वायुरूप में विष्ट हो जाते है और जब योग्य–बाह्मण वस्त्र, अन्न, गाय, अश्व, ग्राम आदि से सम्पूजित हो जाते है तो वे प्रसन्न हो जाते

हैं-

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियः।

पशून् सौख्यं धनं धान्यम् प्राप्नुयात्पितृपूजनात् ।।

विष्णु पुराण' में श्राद्ध की प्रशंसा इस प्रकार की गयी है कि श्रद्धासहित श्राद्धकर्म के द्वारा मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रूद्र, अश्विनी कुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरूतगण, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु सरीसृप, तथा भूतगण आदि सभी जगत् को प्रसन्न कर देता है। मनुस्मृति में भी उल्लेख हुआ है कि ऋषि, पिता, देवता, जीवजन्तु और अतिथि - ये गृहस्थों से कुछ पाने की आशा रखते हैं। वेदाध्ययन से ऋषियों का, होम से देवताओं का, श्राद्ध और तर्पण से पितरों का, अन्न से अतिथियों का और बलिकर्म से प्राणियों के ऋण से मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसीलिए पितरों से ऋण मुक्त होने के

लिए अन्नादि या जल या दूध या फलमूलों से पितरों का श्राद्ध करना परमावश्यक है |

श्राद्ध के प्रकार

धर्मशास्त्रों के अनुसार पितृऋण से मुक्ति प्रप्ति हेतु श्राद्ध अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्रों में श्राद्ध के अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है। अतः श्राद्धकर्म करने से पूर्ण उसके प्रकारों के विषय में तथा किस अवसर पर कौन सा श्राद्ध किया जाता है, यह जानना आवश्यक है।

गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्र स्मृतियों तथा पुराणों में श्राद्ध के प्रकारों तथा प्रक्रिया के विषय में अनेक मत प्राप्त होते है । अतः श्राद्धों का वर्गीकरण कई प्रकारों से हुआ हैं।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में पार्वण, काम्य, आभ्युदयिक तथा एकोद्दिष्ट इन चार श्राद्धों का वर्णन प्राप्त होता है ।

भारद्वाज - गृह्यसूत्र' में पार्वण, नान्दी तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध के इन तीन प्रकारो का वर्णन प्राप्त होता है। एकोद्दिष्ट तथा काम्य श्राद्धों का केवल संकेतमात्र किया गया है । मानवगृह्यसूत्र में नित्य, नैमित्तिक, काम्य वृद्धि तथा पार्वण- ये पांच भेद उल्लिखित है। आपस्तम्बगृहसूत्र' में पार्वण, अष्टका, अन्वष्टका, एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण, नान्दी तथा ये गए एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण तथा नान्दीमुख - ये पांच भेद है। शाखायनगृह्यसूत्र में पार्वण, मासि–मासि, एकोद्दिष्ट तथा आभ्युदयिक- ये चार श्राद्ध वर्णित हैं जबकि पाँचवे श्राद्ध सपिण्डीकरण का वर्णन इसी गृह्यसूत्र के परिशिष्ट भाग के एक अध्याय में किया गया है। पारस्करगृह्यसूत्र में पार्वण,

एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण, आभ्युदयिक तथा काम्य पांच भेद श्राद्ध के उपलब्ध होते है। श्राद्धविवेक' में नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिद और पार्वण- ये पाच भेद स्वीकार किये हैं। एकोद्दिष्ट षोडश श्राद्धों को नैमित्तिक श्राद्ध में तथा गोष्ठी आदि और श्राद्धों को पार्वण में सम्मिलित कर लिया है । (अमावस्या पर किया जाने वाला पार्वण श्राद्ध होता है या पर्वो पर किया जाने वाला श्राद्ध पार्वण-श्राद्ध कहलाता है ।

कूर्मपुराण में पांच प्रकार के श्राद्धों का विवेचन हुआ है यथा नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि श्राद्ध एवं पार्वणश्राद्ध। इस पुराण में "यात्रा में छठा, शुद्धि के लिए सातवां तथा दैविक श्राद्ध आठवां माना गया है, साथ में यह भी कहा गया है कि इसके सम्पादन से श्राद्ध कर्ता भय से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार से इस पुराणों में गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में

वर्णित श्राद्ध के प्रकारों से अतिरिक्त यात्राश्राद्ध, शुद्धि श्राद्ध तथा देविक श्राद्ध इन तीन प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख मिलता है।

मत्स्य पुराण में तीन प्रकार के श्राद्ध प्रमुख बताये गए है जिन्हें नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य श्राद्ध कहते हैं-

"त्रिविधं श्राद्ध मुच्यते"

यमस्मृति में पांच प्रकार के श्राद्धों का वर्णन मिलता है – नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि तथा पार्वण।

श्राद्ध परिचय

विष्णु पुराण' में श्राद्ध की प्रशंसा इस प्रकार की गयी है कि श्रद्धासहित श्राद्धकर्म के द्वारा मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रूद्र, अश्विनी कुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरूतगण, विश्वेदेव, पितृगण,

पक्षी, मनुष्य, पशु सरीसृप, तथा भूतगण आदि सभी जगत् को प्रसन्न कर देता है। मनुस्मृति में भी उल्लेख हुआ है कि ऋषि, पिता, देवता, जीवजन्तु और अतिथि - ये गृहस्थों से कुछ पाने की आशा रखते हैं। वेदाध्ययन से ऋषियों का, होम से देवताओं का, श्राद्ध और तर्पण से पितरों का, अन्न से अतिथियों का और बलिकर्म से प्राणियों के ऋण से मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसीलिए पितरों से ऋण मुक्त होने के लिए अन्नादि या जल या दूध या फलमूलों से पितरों का श्राद्ध करना परमावश्यक है |

श्राद्ध के प्रकार

धर्मशास्त्रों के अनुसार पितृऋण से मुक्ति प्रप्ति हेतु श्राद्ध अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्रों में श्राद्ध के अनेक प्रकारों का वर्णन किया गया है। अतः श्राद्धकर्म करने से पूर्ण उसके प्रकारों के विषय में तथा किस अवसर पर कौन सा श्राद्ध

किया जाता है, यह जानना आवश्यक है।

गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्र स्मृतियों तथा पुराणों में श्राद्ध के प्रकारों तथा प्रक्रिया के विषय में अनेक मत प्राप्त होते है । अतः श्राद्धों का वर्गीकरण कई प्रकारों से हुआ हैं। आश्वलायनगृह्यसूत्र में पार्वण, काम्य, आभ्युदयिक तथा एकोद्दिष्ट इन चार श्राद्धों का वर्णन प्राप्त होता है ।

'भारद्वाजगृह्यसूत्र' में पार्वण, नान्दी तथा सपिण्डीकरण श्राद्ध के इन तीन प्रकारो का वर्णन प्राप्त होता है। एकोद्दिष्ट तथा काम्य श्राद्धों का केवल संकेतमात्र किया गया है । मानवगृह्यसूत्र में नित्य, नैमित्तिक, काम्य वृद्धि तथा पार्वण- ये पांच भेद उल्लिखित है। आपस्तम्बगृहसूत्र' में पार्वण, अष्टका, अन्वष्टका, एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण, नान्दी तथा ये गए एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण तथा नान्दीमुख - ये पांच भेद है। शाखायनगृह्यसूत्र में पार्वण, मासि–मासि, एकोद्दिष्ट तथा

आभ्युदयिक- ये चार श्राद्ध वर्णित हैं जबकि पाँचवे श्राद्ध सपिण्डीकरण का वर्णन इसी गृह्यसूत्र के परिशिष्ट भाग के एक अध्याय में किया गया है। पारस्करगृह्यसूत्र में पार्वण, एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण, आभ्युदयिक तथा काम्य पांच भेद श्राद्ध के उपलब्ध होते है। श्राद्धविवेक' में नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिद और पार्वण- ये पाच भेद स्वीकार किये हैं। एकोद्दिष्ट षोडश श्राद्धों को नैमित्तिक श्राद्ध में तथा गोष्ठी आदि और श्राद्धों को पार्वण में सम्मिलित कर लिया है । (अमावस्या पर किया जाने वाला पार्वण श्राद्ध होता है या पर्वो पर किया जाने वाला श्राद्ध पार्वण-श्राद्ध कहलाता है ।

कूर्मपुराण में पांच प्रकार के श्राद्धों का विवेचन हुआ है यथा नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि श्राद्ध एवं पार्वणश्राद्ध। इस पुराण में "यात्रा में छठा, शुद्धि के लिए सातवां तथा दैविक

श्राद्ध आठवां माना गया है, साथ में यह भी कहा गया है कि इसके सम्पादन से श्राद्ध कर्ता भय से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार से इस पुराणों में गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में वर्णित श्राद्ध के प्रकारों से अतिरिक्त यात्राश्राद्ध, शुद्धि श्राद्ध तथा देविक श्राद्ध इन तीन प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख मिलता है।

मत्स्य पुराण में तीन प्रकार के श्राद्ध प्रमुख बताये गए है जिन्हें नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य श्राद्ध कहते हैं-

"त्रिविधं श्राद्ध मुच्यते"

यमस्मृति में पांच प्रकार के श्राद्धों का वर्णन मिलता है – नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि तथा पार्वण।

विश्वामित्र ने श्राद्धों के बारह भेद किये है- **नित्य, नैमित्तिक,**

काम्य, वृद्धि अर्थात् पुत्रोत्पत्ति या किसी विवाहादि शुभ अवसर पर किया जाने वाला, सपिण्डन, पार्वण, गोष्ठी, शुद्धि, कर्माङ्ग, दैविक, यात्रा और पुष्टि - श्राद्ध । विश्वामित्र में उक्त बारह प्रकार के श्राद्धों की परिभाषाए नहीं दी है।

धर्मसिन्धु में श्राद्ध के ६६ अवसर बतलाए गए हैं। जो इस प्रकार है-

- एक वर्ष की 12 अमावास्याओं पर किए जाने वाले 12 श्राद्ध ।
- युगादि दिनो पर चार श्राद्ध अर्थात् माघ कृष्ण अमावस्या, भाद्रपद कृष्ण त्रायोदशी, वैशाख शुक्ल तृतीया तथा कार्तिक शुक्ल नवमी।

● मन्वन्तरादि पर चौदह श्राद्ध अर्थात् चैत्र शुक्ल तृतीया, चैत्र पूर्णिमा, ज्येष्ठपूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल दशमी, आषाढ़ पूर्णिमा, श्रावण कृष्ण अष्टमी, भाद्रशुक्ल तृतीया, आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, कार्तिक पूर्णिमा, पौष शुक्ल एकादशी, माघ शुक्ल सप्तमी, फाल्गुन पूर्णिमा, फाल्गुण अमावस्या।

● संक्रांति के बारह श्राद्ध

● धृति नामक तेरह श्राद्ध व्यतीपात योग के तेरह श्राद्ध महालय के सोलह श्राद्ध

● चार अष्टका अर्थात् मार्गकृष्ण अष्टमी, पौष कृष्ण

● अष्टमी, माघ कृष्ण अष्टमी तथा भाद्रपद कृष्ण अष्टमी ।

● चार अन्वष्टका अर्थात् मार्गकृष्ण नवम, पौष कृष्ण नवमी, माघ कृष्ण नवमी, तथा भाद्र कृष्ण नवमी।

● पूर्वेद्यु: श्राद्ध चार श्राद्ध अर्थात् माघ कृष्ण सप्तमी, पौष

कृष्ण सप्तमी, माघकृष्ण सप्तमी तथा भाद्र कृष्ण सप्तमी।

इस प्रकार कुल मिलाकर 12+4+14+12+13+13+16+4+4+4 = 96 अर्थात् वर्ष भर मे 96 श्राद्ध करने का विधान है। उपर्युक्त 96 प्रकार के श्राद्ध के लक्षण, परिभाषाएं तथा विधियाँ उपलब्ध नहीं होती है ।

भारतीय परम्परा में 12 श्राद्धो को प्रमुख माना गया है, जो इस प्रकार है -

1. "नित्य - श्राद्ध'

प्रतिदिन किए जानें वाले श्राद्ध को नित्य श्राद्ध कहते हैं । इस

श्राद्ध में विश्वेदेव को स्थापित नहीं किया जाता । इस श्राद्ध को केवल जल से भी सम्पन्न किया जा सकता है। मनुस्मृति एवं मत्स्यपुराण' में अहरह- श्राद्ध का वर्णन आया है। अहरह–श्राद्ध ऐसा श्राद्ध है जो प्रतिदिन भोजन या जल या दूध, फलो एवं कन्दमूलों के साथ पितरों को प्रीति पूर्वक अर्पण किया जाता है।

2. नैमित्तिक श्राद्ध-

किसी को निमित्त बनाकर जो श्राद्ध किया जाता है, उसे नैमित्तिक श्राद्ध कहते हैं। इसे एकोद्दिष्ट के नाम से भी जाना जाता है। एकोद्दिष्ट का अर्थ है, किसी एक को निमित्त मानकर किए जाने वाला श्राद्ध जैसे किसी की मृत्यु हो जाने पर दशाह, एकादशाह आदि एकोद्दिष्ट श्राद्ध के अन्तर्गत आते हैं। इसमें भी विश्वेदेवोंको स्थापित नहीं किया जाता तथा विषम संख्या

में ब्राह्मणों को तृप्त किया जाता है जैसे एक, तीन, पांच इत्यादि ।

3. काम्य श्राद्ध-

किसी कामना की पूर्ति के निमित्त जो श्राद्ध किया जाता है। वह काम्य श्राद्ध के अन्तर्गत आता है । यह श्राद्ध पार्वण श्राद्ध की विधि के अनुसार सम्पन्न किया जाता है ।

4. वृद्धि श्राद्ध –

किसी प्रकार की वृद्धि में जैसे पुत्र जन्म, वास्तु प्रवेश, विवाहादि प्रत्येक मांगलिक कार्य के आरम्भ में कार्य की निर्विघ्नता से समाप्ति के लिए पितरों की प्रसन्नता हेतु जो श्राद्ध होता है उसे वृद्धि श्राद्ध कहते हैं। इसे नान्दीश्राद्ध या

नान्दीमुखश्राद्ध के नाम भी जाना जाता है।

5. पार्वण श्राद्ध–

पार्वण श्राद्ध का सम्बन्ध पर्व से है। किसी पर्व जैसे पितृपक्ष, अमावास्या या पर्व की तिथि आदि पर किया जाने वाला श्राद्ध पार्वण श्राद्ध कहलाता है। यह श्राद्ध विश्वेदेव सहित होता है ।

6. सपिण्डन-

श्राद्ध सपिण्डन शब्द का अभिप्राय पिण्डों को मिलाना । पितरों की मुक्ति हेतु पिण्ड दान की प्रक्रिया सपिण्डन क्रिया कहलाती है ।। प्रेत पिण्ड का पितृ पिण्डों में सम्मेलन कराया जाता है। इसे ही सपिण्डनश्राद्ध कहते हैं । इसमें गन्ध, जल, तिल से भर कर चार पात्र रखे जाते है । अर्घ्य के लिए प्रेत-

पात्र का जल पितरों के लिए निश्चित पात्र में डाल देते है। शेष - भाग नित्य - श्राद्ध के समान होता है।

7. गोष्ठी श्राद्ध -

गोष्ठी शब्द का सामान्य अर्थ है, समूह । जो श्राद्ध दो या दो से अधिक लोगों के द्वारा समूह में उपस्थित होकर सम्पन्न किए जाते हैं। वह गोष्ठी श्राद्ध कहते हैं ।

8. शुद्ध्यर्थ श्राद्ध –

शुद्धि के निमित्त जो श्राद्ध किए जाते हैं। उसे शुद्धयर्थश्राद्ध कहते हैं। यह श्राद्ध पितरों तर्पण तथा ब्राह्मणों को भोजनादि खिलाकर किया जाता है।

9. कर्माङ्गग श्राद्ध

कर्मांग श्राद्ध का अर्थ है, कर्म का अंग, अर्थात् किसी प्रधान कर्म के अंग के रूप में जो श्राद्ध सम्पन्न किए जाते हैं। उसे कर्माङगश्राद्ध कहते हैं। गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन आदि संस्कारों के समय किया जाने वाले श्राद्ध “कर्माङ्गश्राद्ध’ हैं।

10. दैविक श्राद्ध

देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जो श्राद्ध किया जाता है, वह दैविक श्राद्ध कहलाता है। यह श्राद्ध सप्तमी आदि तिथियों पर विशेष हविष्य पदार्थों द्वारा किया जाता है।

11. यात्रार्थ श्राद्ध -

यात्रा के उद्देश्य से किया जाने वाला श्राद्ध यात्रार्थ श्राद्ध कहलाता है। जैसे- तीर्थ में जाने के उद्देश्य से या देशान्तर जाने

से पूर्व किया जाने वाला श्राद्ध। इसे घृतश्राद्ध भी कहा जाता है।

12. पुष्ट्यर्थ श्राद्ध-

पुष्टि के निमित्त जो श्राद्ध सम्पन्न हो, जैसे शारीरिक एवं आर्थिक उन्नति के लिए किया जाना वाला श्राद्ध पुष्ट्यर्थ श्राद्ध कहलाता है।

इस प्रकार सूत्र ग्रन्थों में स्मृतिग्रन्थों तथा धर्मशास्त्रों में जिन श्राद्ध का वर्णन प्राप्त होता हैं अनका अन्तर्भाव उक्त 12 प्रकार के श्राद्धों में माना गया है, तथा गृहस्थों के लिए उक्त श्राद्धों का विशेष महत्त्व है |

श्राद्ध करने के अधिकारी

पितरों के निमित्त, उनकी आत्मा की तृप्ति के लिए श्रद्धापूर्वक जो अर्पित किया जाए वह श्राद्ध है। शास्त्रों में पितरों के मोक्ष के निमित्त पुत्र की अनिवार्यता मानी गई हैं।

एक से अधिक पुत्र होने पर श्राद्ध का अधिकारी कौन सा पुत्र है अथवा पुत्र के आभाव में श्राद्ध का अधिकारी कौन है ?

इस विषय पर भी धर्मशास्त्रों में विचार किया गया है । शास्त्रानुसार औरस पुत्र श्राद्ध का प्रथम अधिकारी है। किन्तु एक से अधिक ओरस पुत्रों की स्थिति में ज्येष्ठपुत्र श्राद्ध का प्रथम अधिकारी है उसके अभाव में कनिष्ठ औरस पुत्र, कनिष्ठ ओरस – पुत्र के अभाव में पौत्र, उसके अभाव में प्रपोत्र श्राद्ध करने का अधिकारी होता है। कृत्रिम - पुत्र के अभाव में तथा पत्नी के अभाव में सहोदर अधिकारी है। सहोदर भाई के अभाव में उसका पुत्र, भाई या पिता श्राद्ध कर सकता है। उक्त सम्बन्ध में जिसका चूडाकरण संस्कार हो चुका हो

अथवा तीन वर्ष का बालक जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो, विना वैदिक मन्त्रों से श्राद्ध कर्म करने का अधिकारी है। सगोत्र के अभाव में हारीत स्मृति में कहा गया है कि यदि कोई असगोत्र प्रथम दिन में प्रेताग्नि क्रिया करता है, तो वह भी श्राद्ध का अधिकारी है। मनुस्मृतिकार के कथनानुसार यदि सब सपत्नियों में एक ही स्त्री के पुत्र हो तो सब स्त्रियां पुत्रवती होती है। सपत्नी पुत्र के अभाव में दौहित्र श्राद्ध का अधिकारी है -

प्रथमौरसपुत्रस्य ज्येष्ठस्याधिकारस्तदभावे व्यवहितस्य कनिष्ठस्य औरस पुत्रौभावे पोत्रस्य तदभावे प्रपौत्रस्य पुत्रः पोत्रः प्रपौत्रो वा ।।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार एक पिता के बहुत पुत्र हों और

वे सब संयुक्त रूप से रहते हो तो सर्वसम्मति से ज्येष्ठपुत्र को ही श्राद्धकर्म करना चाहिए। यदि सम्पत्ति का विभाजन हो चुका हो तो सभी को पृथक्-पृथक् करना चाहिए। परन्तु एकोदिष्ट श्राद्ध विभक्त या अविभक्त पुत्रों में से (एकादशाह आदि क्रमश - क्रिया), ज्येष्ठपुत्र के द्वारा ही सम्पन्न करानी चाहिए। परन्तु वार्षिकश्राद्ध पृथक्-पृथक् किए जा सकते हैं

बह्वः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्रवासिनः।

सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैकेन यत् कृतम्।

द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत् इति ।

गौतम-धर्मसूत्र के अनुसार सन्तान के अभाव में मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति को सपिण्ड, के व्यक्ति की सम्पति सगोत्र

एवं सप्रवर या उसकी पत्नी ले सकती है। तथा उक्त सभी व्यक्ति श्राद्ध करने के अधिकारी है। पुत्र के अभाव में सपिण्ड, सपिण्डों के अभाव में मातृसपिण्ड, मातृसपिण्डों के अभाव में शिष्य, उसके भी अभाव में ऋत्विक् तथा ऋत्विक् के अभाव में आचार्य श्राद्ध करने का अधिकारी है।

बौधायनधर्मसूत्र में सर्वप्रथम सपिण्डी अर्थात्, सवर्णा पत्नी से उत्पन्न पुत्र, पौत्र सहोदर भाता और प्रपौत्र को, सपिण्डों के अभाव में सकुल्य अर्थात् सपिण्डों के सम्बन्ध विशेष का ज्ञान न होने पर सकुल्य को, सकुल्य के अभाव में आचार्य को, आचार्य के अभाव में अन्तेवासी शिष्य को तथा उसके भी अभाव में यज्ञ करने वाले ऋत्विक् को श्राद्ध करने का अधिकार प्रदान किया गया है ।

यदि बिना पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र के व्यक्ति मर जाता है तो

उसके उत्तराधिकारी पत्नी, पुत्री, माता, पिता, भाई, भतीजे, गोत्रज, बन्धु (सपिण्ड सम्बन्धी लोग), शिष्य एवं सहपाठी– इनमें क्रमश: (एक के न रहने पर आगे वाला दूसरा) मृतक का धन प्राप्त करता है। अत: उसे ही उस मृतक का श्राद्धकर्म करना चाहिए। यह नियम सभी वर्गों के लिए है।

पत्नी दुहितरश्चैव पितरो भ्रातरस्तथा ।

तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥

एषामभावे पूवस्य धनभागुत्तरोत्तरः ।

स्वर्यात्स्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥

अग्निपुराण २५६.२२-२३

ऋष्यश्रृंग के अनुसार सर्वप्रथम पुत्र, उसके अभाव में भाई उसके अभाव में पिता, उसके अभाव में मामा, मामा के

अभाव में गुरू, गुरू के अभाव में सगोत्र, उनके अभाव में अन्य बन्धु श्राद्ध करने के अधिकारी है। यहीं पर उल्लेख है कि पति-पत्नी भी एक-दूसरे के श्राद्ध कर सकते है तथा सास - श्वशुर के श्राद्ध करने की अधिकारिणी पुत्रवधू है, पुत्रवधू के अभाव में ब्राह्मण को ही श्राद्ध करने का अधिकारी माना गया है।

बृहस्पति के कथनानुसार जब पति अलग हो तो उसकी विधवा को अचल सम्पत्ति के अतिरिक्त सभी प्रकार की सम्पत्ति अर्थात् धरोहर आदि प्राप्त होती है। चल एवं अचल सम्पत्ति सोना, साधारण धातु आदि, अन्न, पेय पदार्थ, वस्त्रादि ग्रहण कर लेने के उपरान्त उसे ही मासिक, षाण्मासिक एवं वार्षिक श्राद्ध करने का अधिकार है। शातातप ने विशेषतया गया तीर्थ में किसी को भी स्नेहवश श्राद्धकर्म करने का अधिकार प्रदान किया है ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

ब्रह्मपुराण के अनुसार सगोत्र या असगोत्र के अभाव में उनकी स्त्रियाँ भी श्राद्ध करने की अधिकारिणी मानी गयी है, किन्तु विष्णुपुराण में दोनों पितृ - मातृ वंशों के विनष्ट हो जाने पर स्त्रियों को श्राद्ध करने का अधिकार है, ऐसा कहा गया है। उनके अभाव में राजा ही मृतक के श्राद्धकर्म करने का अधिकारी है।

मत्स्यपुराण के अनुसार सपिण्ड के अभाव में सभी समानोदक सन्तति अधिकारी है, समानोदक के अभाव में मातृपक्ष के सपिण्ड, उनके अभाव में मातृ समानोदक श्राद्ध करने के अधिकारी माने गये है।

श्राद्धविमर्श के अनुसार पुत्रों से भिन्न गुरू, शिष्य यजमान,

पुरोहित, मित्रादि, सभी श्रद्धावान् श्राद्ध देने या करने के अधिकारी है। इसी के साथ यह भी कहा गया है कि संगृहीत दासी पुत्रादि एकोदिष्ट और पार्वण करने में समर्थ हो तो वे भी श्राद्ध के अधिकारी हैं।

शास्त्रों के अनुसार मृतक के इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि शास्त्रों के अनुसार मृतक उत्तराधिकारियों का क्रम इस प्रकार है- सर्वप्रथम पुत्र, पुत्र के आभाव में पौत्र एवं प्रपौत्र, तत्पश्चात् क्रमशः पत्नी, दुहिता पुत्री दौहित्र, पिता, माता, सहोदर भाई, विमातृ बन्धु, सहोदर भाई का पुत्र, विमातृबन्धु का पुत्र । अन्य ग्रन्थों के अनुसार श्राद्ध कर्म करने के अधिकारियों का क्रम इस प्रकार है- पुत्र ओरस या दत्तक, पोत्र, प्रपौत्र, पत्नी, विवाहिता पुत्री, अविवाहिता पुत्री, जिसे मृतक की सम्पत्ति मिली हो दोहित्र, सहोदर, विमात बन्ध,

सहोदर का पुत्र, विमातृबन्धु का पुत्र, पिता, माता, पुत्रवधू, बहन, विमातृ बहन, सगी बहन का पुत्र भानजा, विमातृबन्धु का पुत्र, चाचा, भतीजा, अन्य गोत्रज सपिण्ड, समानोदक, कोई गोत्रज, नाना, मामा, ममेरा भाई है अर्थात् क्रमशः तीन प्रकार के बन्धु, शिष्य, जामाता, श्वशुर, मित्र, दासी पुत्र, श्रद्धावान्, ब्राह्मण तथा राजा जो मृतक की सम्पत्ति लेता है, श्राद्धकर्म करने के अधिकारी माने गये हैं। वास्तव में पितृ-कर्म करने का अधिकारी तो औरसपुत्र या दौहित्र ही होता है। द्वादश - पुत्रों में केवलमात्र औरस ओर दत्तकपुत्र ही अधिकारी होते है ।

पितरों का निवास स्थान

प्रिय अध्येताओं! अब पितरों के निवास स्थान के विषय में बताया जा रहा है। किसी के निमित्त किए जाने वाले कार्य को करने से पूर्व यह जानना आवश्यक होता है, कि उनका निवास स्थान कहां है। जिससे उचित समय में उनकी तृप्ति हेतु श्राद्धकर्म किया जाए। उदाहरणार्थ देवताओं का निवास स्थान उत्तरी ध्रुव प र कहा गया है। सूर्य के उत्तर गोल में होने पर देवताओं का दिन होता है। अतः सूर्य के उत्तर गोलस्थ व्रत, पर्व एवम् उत्सवों का धर्मशास्त्रीय निर्णय होने पर ही देवताओं की प्रसन्नता हेतु यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं। पितरों के निमित्त श्राद्ध का उचित समय जानने पूर्व उनके निवास स्थान को जानना से अत्यन्त आवश्यक है।

ऋग्वेद के अनुसार पितृलोक सूर्यलोक से परे यमलोक अर्थात् तृतीय-लोक में स्थित है। अथर्ववेद में कहा गया है कि

चन्द्रलोक से उर्वभाग में पितृलोक स्थिर है-

विधूर्ध्वलोके पितरो वसन्ति ।

ऐतरेय ब्राह्मण में तृतीय अन्तरिक्ष को पितृलोक कहा है। शतपथ, ताण्ड्य तथा तैत्तिरीय–ब्राह्मण के अनुसार चन्द्रलोक से नीचे की ओर तृतीयलोक अर्थात् स्वर्गलोक में पितृलोक है। बृहदारण्योपनिषद् में पितृलोक की स्थिति यमलोक के समीप मानी गयी है। कौषीतकि- ब्राह्मण के अनुसार सोम अर्थात् चन्द्रलोक तथा यमलोक ही पितृलोक है।

पुराणों में भी पितृलोक की स्थिति का वर्णन उपलब्ध होता है। मत्स्यपुराण के अनुसार स्वर्ग से परे ज्योतिर्भासी पितृलोक है। वायुपुराण में आकाश की दक्षिण दिशा को

पितृलोक माना गया है। हरिवंश पुराण में तो यहां तक कहा गया है कि ब्रह्मलोक सत्यलोक से नीचे के सभी लोक पितृलोक है। ज्योतिष शास्त्रा के प्रकाण्ड आचार्य भास्कर ने सिद्धान्तशिरोमणि में पितरों के निवास स्थान का वर्णन इस प्रकार किया है-

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः

स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति ।

पश्यन्ति तेऽर्क निजमस्तकोर्ध्वे

दशे यतोऽस्माद्द्यु दलं तदैषाम् ।।

भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं

तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम् ।

कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥

चन्द्रमा केऊर्ध्व (ऊपरी) पृष्ठ पर पितरों (भौतिक शरीर छोड़ कर जो मृतात्मा रहते हैं।) का निवास स्थान है। पितर लोक वासी अपने नीचे पृथ्वी को देखते हैं। जैसे भूपृष्ठ वासी चन्द्रमा को ऊपर देखते हैं वैसे ही चन्द्रपृष्ठ वासी पृथ्वी को आकाश में अपने ऊपर देखते हैं । अर्थात् चन्द्रपृष्ठ वासियों के लिए आकाशस्थ पृथ्वी चन्द्रमा की तरह देखी जाती है। भूगर्भाभिप्रायिक अमान्त समय में चन्द्रपृष्ठस्थ मृतात्मा अपने अपने स्थान से ऊपर सूर्य को देखते हैं इसलिए अमान्त समय में चन्द्रपृष्ठ में मध्याह्न अर्थात् दिनार्ध होता है ।

अमान्त समय से ६ राशि की दूरी पर पूर्णान्त होने से पूर्णान्त में पितरों के लिए निशीथ अर्थात् रात्यर्ध (रात का आधा)

होता है । इस प्रकार कृष्णपक्ष की सार्ध सप्तमी को पितृलोकाभिप्रायिक क्षितिज में सूर्योदय होता है और इसी सिद्धान्त से शुक्लपक्ष की सार्ध सप्तमी को पितृलोकाभिप्रायिक चन्द्र पृष्ठ में सूर्यनारायण अस्त होते हैं।
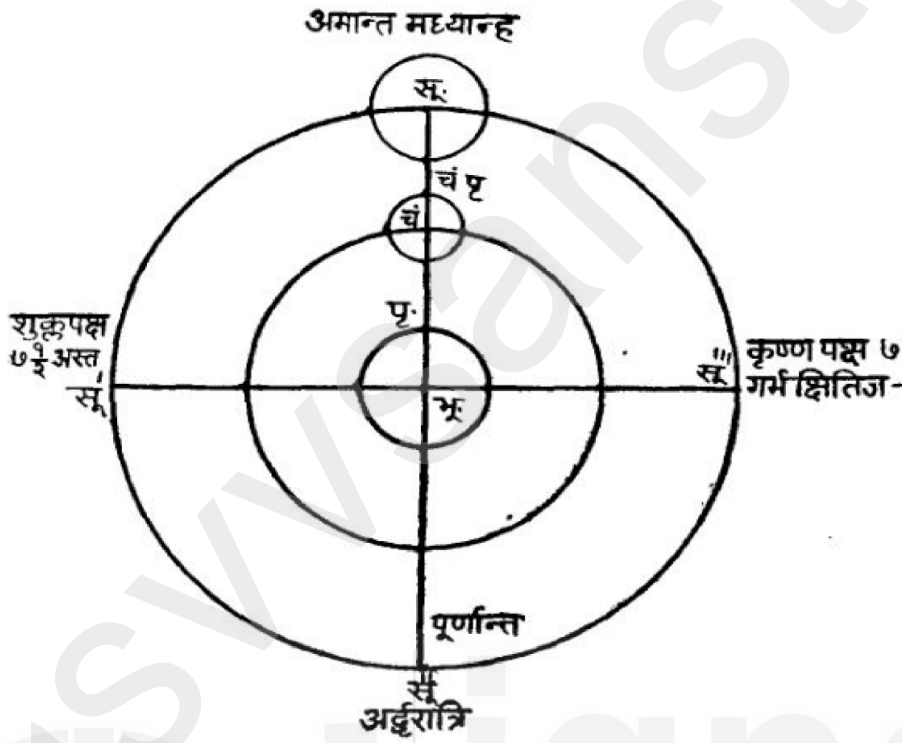
जैसा कि चित्र से स्पष्ट है - सूर्य कक्षा में गर्भाभिप्रायिक अमान्त काल में सू = सूर्य में है तथा चन्द्र कक्षा में च चन्द्र है। अर्धात अमान्त काता में सूर्य एवं चन्द्र दोनों की राशि समान हैं।

पृथ्वी=पृ०

भू = भूगर्भ केन्द्र

सू सू'= अमान्त के बाद की साढ़े सात तिथियाँ

पूर्णान्त = सू'= पितरों की अद्धरात्रि ।

कृष्ण पक्ष की साधसप्तमी तिथि यहां दर्शान्त

सू= पितृलोकाभिप्रायिक सूर्योदय= समय में चन्द्र पृष्ठाभिप्रायिक खमध्य में सूर्य बिम्ब होने से चन्द्रपृष्ठ में मध्याह्न देखा जाना क्षेत्र दर्शन से स्पष्ट है।

हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र तथा गोभिलगृह्यसूत्र में पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक एवं स्वर्गलोक-ये तीनो पितृलोक हैं। साथ में तीनों पितरों पिता, पितामह एवं प्रपितामह के लिए पृथक्-पृथक् लोकों में स्वधा देने का विधान है अर्थात् पिता के लिए पृथ्वीलोक में, पितामह के लिए अन्तरिक्षलोक में तथा प्रपितामह के लिए स्वर्ग लोक में स्वधा देनी चाहिए। गृह्यसूत्रों में वर्णन किया गया है कि जीवात्मा मृत्यूपरान्त द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोक में चला जाता है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि, पितरों के निवास स्थान का सम्बन्ध चन्द्रमा से अवश्य ही है। चन्दमा के पृष्ठ भाग पर पितरों का निवास स्थान है।

श्राद्धकाल एवं स्थान

भारतीय मान्यता के अनुसार किसी भी धार्मिक कार्य का फल

तभी प्राप्त होता है, जब उसका अनुष्ठान उचित काल में किया जाए। शास्त्रों में श्राद्ध के लिए विशेष समय का निर्धारण किया गया है। धर्मशास्त्र के अनुसार पितरों का श्राद्ध प्रत्येक मास में होता है-

मासि–मासि पितृभ्यो दद्यात् । (आश्वलायन गृह्यसूत्र)

श्राद्ध का सम्बन्ध चान्दमास से है। तथा चान्द्रमास में दो पक्ष शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में अपर पक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष श्राद्ध के लिए सर्वोत्तम माना गया है -

अपरः पक्ष पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । (मनुस्मृति 31 / 278)

यह भी कहा गया है, कि पूर्वाह्न की अपेक्षा अपराह्न में श्राद्ध का विशेष महत्त्व है-

श्राद्धस्य पूर्वाहणादपराणो विशिष्यते ।

(मनुस्मृति 31 / 278)

अपराह्ने भाजो वै पितरः तस्माद् अपराहणे पितृयज्ञेन चरन्ति ।

(गोपथब्राह्मण)

शास्त्रों में यह भी कहा गया है जैसे श्राद्ध के लिए पूर्वाण की अपेक्षा अपराह्न श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार सप्ताह के अपरपक्ष कृष्णपक्ष में भी आरम्भिक दिनों की अपेक्षा अन्तिम दिनों का अधिक महत्त्व है।

कात्यायनस्मृतिकार के मतानुसार अमावस्या के दिन जो पिण्ड देने की विधि कही गई है, वह क्षीण चन्द्रमा होने पर दिन

के तृतीय पहर में अथवा सन्ध्याकाल के लगभग उत्तम मानी गयी है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से लेकर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तक चन्द्रमा क्षीण होता है अतः कृष्ण चतुर्दशी के अन्तिम प्रहर में श्राद्ध करने का नियम है।

मनुस्मृति में उल्लेख है कि मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को छोड़ कर तथा दशमी से आरम्भ कर किसी भी दिन, चन्द्रमास की तिथियों में श्राद्ध करने का जो फल है, वह अन्य किसि तिथि में नहीं है। इसी प्रकार भरणी, रोहिणी, आर्दा अदि समनक्षत्रो में तथा विषम नक्षत्रों कृत्तिका, मृगशिरा आदि में श्राद्ध किया जा सकता है-

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ।

श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ।।

युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ।

अयुक्ष तु पितृन्सर्वान्प्रजा प्राप्नोति पुष्कलाम्।।

(मनुस्मृति)

वैसे तो विभिन्न श्राद्धों के लिए पृथक्-पृथक् समय उपयुक्त माने गये है, किन्तु कुछ सामान्य श्राद्ध-काल का उल्लेख गृह्यसूत्रों, स्मृतियों तथा पुराणों में निम्नलिमित है अमावस्या, अष्टका (हेमन्त ओर शिशिर ऋतु के कृष्णपक्षों की चारों अष्टमियां) शुभ दिन (पुत्रोत्पत्ति दिवसादि के अवसर पर) मास का कृष्णपक्ष, दोनों अयनों में (सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन के समय), विषुवत् योग में (सूर्य के तुला और मेष राशि पर संक्रमण करते समय), सूर्य के एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश के दिन (संक्रान्ति के दिन), व्यतीपात-योग में,

शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि के दिन, चन्द्र के हस्त नक्षत्र में स्थित होने पर, सूर्य मेष में तथा बृहस्पति एवं मंगल के सिंह में होने पर, गजच्छाया नामक योग में (जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र में एवं सूर्य हस्त नक्षत्र में तथा वर्षा ऋतु की होने पर यह योग होता है) में, ज्योतिष सन्धियों में, चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के समय श्राद्ध का उपयुक्त समय देखकर जब श्राद्ध कर्ता के मन में श्राद्ध करने के लिए तीव्र इच्छा हो, यही श्राद्ध सम्पादन के लिए उपयुक्त काल है -

अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम् ।

द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिः विषुवत्सूर्यसंक्रमः ।।

व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ।

श्राद्धं प्रतिरूचिश्चैते श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः ।।। (याज्ञवल्क्यस्मृति)

मत्स्यपुराण में इस विषय में वर्णन आया है कि वैधृतियोग, विष्टि (भद्रा) करण, युगादि (वैशाख मास की शुक्ल तृतीया, कार्तिक मास की शुक्ल नवमी, माघ मास की पूर्णिमा, भाद्रपद मास की त्रयोदशी) अक्षय तिथियों में तथा चौदह मन्वन्तरों की तिथियों (आश्विन मास की शुक्ल नवमी, कार्तिक मास की द्वादशी, चैत्र मास की शुक्ल तृतीया, भाद्रपद मास की शुक्ल तृतीया, फाल्गुन मास की अमावस्या, पौष मास की शुक्ल एकादशी, आषाढ़ मास की शुक्ल दशमी, माघ मास की शुक्ल सप्तमी, श्रावण मास की कृष्णाष्टमी, आषाढ़ मास की पूर्णिमा तथा कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र एवं ज्येष्ठ मासों की पूर्णिमा) में श्राद्ध करना श्रेष्ठ होता है |

अतएव उपर्युक्त काल, पक्ष, तिथि, नक्षत्र तथा मासादि श्राद्धकर्म के लिए उपयुक्त काल माने गये है, इन्हीं समयों में

श्राद्ध करना उचित होता है।

पितृपक्ष

भाद्रपद पूर्णिमा से आश्विन कृष्णपक्ष अमावस्या तक के सोलह दिनों को पितृपक्ष कहते हैं। जिस तिथि को माता-पिता का देहांत होता है, उसी तिथी को पितृपक्ष में उनका श्राद्ध किया जाता है। धर्मसिन्धु में श्राद्ध के महत्त्व के विषय में एक प्रसंग आया है कि यम वर्षाकाल के अन्त में यमराज यमपुर से प्रेत और पितरों को भू-लोक में भेजते हैं। वे पितर अपने पुत्रादि अथवा स्वजनों से आशा करते है कि वे उनके निमित्त भोज्य पदार्थ अर्पित करें। वे यह भोज्य पदार्थ श्राद्ध के माध्यम से ग्रहण करते हैं। पूरा दिन अर्थात मनुष्यों का एक पक्ष (आश्विन कृष्णपक्ष) वे श्राद्ध की आशा में भूलोक पर रहते हैं।

यदि श्राद्ध नहीं हुआ हो तो वे सायं काल अप्रसन्न होकर अपने लोक को लौट जाते हैं। अतः इस काल में उन्हें श्राद्ध के द्वारा अवश्य सन्तुष्ट करना चाहिए।

:शास्त्रों के अनुसार चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग पर पितर निवास करते है। हमारा एक चान्द्रमास पितरों का एक दिन होता है। चंद्रमा के ऊर्ध्व भाग पर रह रहे पितरों के लिए कृष्ण पक्ष उत्तम होता है। कृष्ण पक्ष की सार्ध सप्तमी तिथि को उनके दिन का प्रारम्भ होता है। अमावस्या उनका मध्याह्न तथा शुक्ल पक्ष की सार्ध सप्तमी तिथि को दिन की समाप्ति होती है। धार्मिक मान्यता है कि अमावस्या को किया गया श्राद्ध, तर्पण, पिंडदान उन्हें संतुष्टि व ऊर्जा प्रदान करते हैं क्योंकि उस समय उनका मध्याह्न होता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार पृथ्वी लोक में देवता उत्तर गोल में विचरण करते हैं, तथा

चन्दमा भाद्रपद मास की पूर्णिमा को चंद्रलोक के साथ-साथ पृथ्वी के समीप से गुजरता है। इस मास की प्रतीक्षा हमारे पूर्वज पूरे वर्ष भर करते हैं । वे चंद्रलोक के माध्यम से दक्षिण दिशा में अपनी मृत्यु तिथि पर अपने घर के समीप आ जाते है तथा वहाँ भोजनादि ग्रहण कर प्रसन्नतापूर्वक अपनी नई पीढ़ी को आर्शीवाद देकर चले जाते हैं। ऐसा वर्णन 'श्राद्ध मीमांसा' में मिलता है। अतः शास्त्रों के अनुसार पितृपक्ष में अपने पितरों के निमित्त जो अपनी शक्ति सामथ्र्य के अनुरूप शास्त्र विधि से श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, उसके सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं।

श्राद्ध का स्थान

धर्मशास्त्र के अनुसार श्राद्ध कर्म के लिए जिस प्रकार काल

का महत्त्व है उसी प्रकार स्थान का भी विषेष महत्त्व है। शास्त्रोक्त काल, स्थान एवं दिशा के अनुसार किये गए श्राद्धकर्म का विशेष फल कर्मकर्ता को प्राप्त होता है। मनुस्मृति के अनुसार कर्ता को श्राद्ध के लिए दक्षिण की ओर ढालान वाली भूमि खोजनी चाहिए, जो कि पवित्र हो तथा एकान्त में हो जहाँ पर मनुष्य अधिक न जाते हों । उस भूमि को गोबर से लेप करना चाहिए, क्योंकि पितर लोग वास्तविक स्वच्छ स्थलों, नदी-तटों एवं उस स्थान व्रत, पर किये गए श्राद्ध से प्रसन्न होते हैं, जहाँ पर लोग बहुधा कम ही जाते हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में इस विषय में वर्णन प्राप्त होता है, कि श्राद्ध स्थल चतुर्दिक से आवृत, पवित्र एवं दक्षिण की ओर ढालान वाला होना चाहिए ।

कूर्म पुराण के अनुसार वन, पुण्य पर्वत, तीर्थस्थान, मन्दिर,

इनके निश्चित स्वामी नहीं होते तथा ये किसी की वैयक्तिक सम्पत्ति नहीं हैं अतः इन स्थानों पर श्राद्ध करने सर्वोत्तम है। शास्त्रों के अनुसार यदि कोई अपनी पैतृक भूमि को छोड़कर किसी अन्य की भूमि पर अपने पितरों के निमित्त श्राद्ध करता है तो उस भूमि के स्वामी के पितरों के द्वारा वह श्राद्ध - कृत्य नष्ट कर दिया जाता है। अतः व्यक्ति को पवित्र स्थानों, नदी-तटों और विशेषतः अपनी पैतृक भूमि पर, पर्वत के पास के लता - कुंजों एवं पर्वत के ऊपर ही श्राद्ध करना चाहिए ।

धर्मशास्त्र में कुछ ऐसे स्थानविशेष का भी वर्णन प्राप्त होता है, जहां श्राद्ध किसी भी समय किया जा सकता है तथा उन स्थानों पर श्राद्ध का विशिष्ट माहात्मय है। शास्त्रानुसार जो भी कुछ पवित्र वस्तु गया, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, नैमिष वन (सरस्वती नदी पर), गंगा, यमुना एवं पयोष्णी पर, अमरकंटक,

नर्मदा, काशी, कुरुक्षेत्र, भृगुतुंग, हिमालय, सप्तवेणी, ऋषिकेश में दी जाती है, वह अक्षय होती है तथा उसका फल भी अक्षय होता है ।

श्राद्ध के लिए सर्वोत्कृष्ट स्थानों में गया का स्थान सर्वोपरि है । यद्यपि किसी भी तीर्थ स्थान पर अथवा पैतृक भूमि पर पितृपक्ष में मृत माता-पिता अथवा अन्य पूर्वजों के निमित्त श्राद्ध किया जाता है, परंतु गया श्राद्ध का विशेष महत्व है। शास्त्रों में वर्णन प्राप्त होता है कि गया ऐसा तीर्थ है, जहां किसी भी दिन, किसी भी मास में तथा किसी भी तिथि को पिण्डदान किया जा सकता है। -

न कालादि गयातीर्थे दद्यात् पिण्डाश्च नित्यशः ।।

(अग्निपुराण)

अर्थात गया तीर्थ में पिण्डदान का कोई निश्चित समय नहीं है। वहां प्रतिदिन पिण्डदान किसा जा सकता है। कहा जाता है कि गया में पहले विभिन्न नामों के 360 वेदियां थीं जहां पिंडदान किया जाता था। इनमें से अब 48 ही उपलब्ध है। यहां की वेदियों में विष्णुपद मंदिर, फल्गु नदी के किनारे और अक्षयवट आदि स्थानों पर पिंडदान करना आवश्यक माना जाता है। इसके अतिरिक्त वैतरणी, प्रेतशिला, सीताकुंड, नागकुंड, पांडुशिला, रामशिला, मंगलागौरी, कागबलि आदि भी पिंडदान के प्रमुख स्थान है।